क्षितिज सा ध्येय

श्री चमनलाल सप्रू जी
को सप्रेम भेंट
2-3-82

आचार्य राधा गोविन्द कविराज

साहित्याचार्य, साहित्यरत्नाकर, साहित्यसुधाकर, हिन्दी
शिक्षण पारंगत, सत्यार्थ भूषण, आयुर्वेद भिषक् ।





क्षितिज सा ध्येय

['क्षितिज सा ध्येय' में प्रगतिशीलता तथा शैली की नवीनता के दर्शन होते हैं। कवि यथार्थ भावनाओं को थोड़े शब्दों में व्यक्त करने में सफल है। उसके भविष्य की संभावनाओं के स्पष्ट संकेत इसकी कृतियों में मिलते हैं।]

सम्पादक—"समन्वय", आगरा।

आचार्य राधागोविंद कविराज

साहित्याचार्य, साहित्य रत्नाकर, साहित्य सुधाकर, हिन्दी शिक्षण पारंगत, सत्यार्थ भूषण, आयुर्वेद भिषक।

प्रकाशक

आनन्दकृष्ण साहित्य कला संगम

उरिपोक : इम्फाल : मणिपुर

पोस्ट पिन नं॰ ७९५००१

प्रथम संस्करण

२७ मार्च, १९७६

मूल्य रु॰ ५-००

❁ रचना के प्रति ❁

हिन्दी निदेशालय द्वारा आयोजित नव लेखक शिविर में श्री राधा गोविन्द आचार्य से मिलकर प्रसन्नता हुई। हिन्दी भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार के प्रति इनकी लगन सराहनीय है।

इनकी कुछ रचनायें भी सुनने और पढ़ने का अवसर मुझे मिला। भाषा पर इनका अधिकार है और इनमें सृजनात्मक प्रतिभा के अंकुर विद्यमान हैं।

'क्षितिज सा ध्येय' नाम से इनकी कविताओं का एक संकलन प्रकाशित हो रहा है। मुझे विश्वास है कविता प्रेमी जन उसे अवश्य अपनायेंगे।

मेरी सद्‌भावनायें उनके साथ हैं।

१८५, सिविल लाइन्स,
बरेली (उ० प्र०)

निरंकार देव सेवक
२७।३।७६
गुवाहाटी (असम)

भारत-रोमानिया मैत्री

के संदर्भ में

श्रद्धेयवर श्रीनिकोलाय ज्वेर्या जी

प्राच्य दर्शन तथा विद्या

रोमानिया भाषा

रोमानिया राष्ट्र

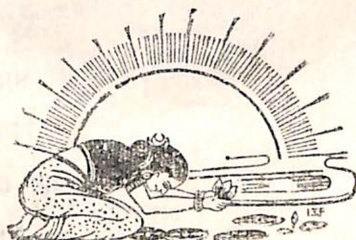
हिन्दी भाषा

के

विद्वान लेखक व राष्ट्र सेवक

को

सादर समर्पित !



अनुक्रमणिका



प्राक्कथन

इस संग्रह के प्रकाशन की प्रेरणा 'श्री निकोलाय ज्वेर्या जी ने दी है। पद्मश्री कालाचाँद शास्त्री जी ने इस संग्रह का अवलोकन कर आवश्यक सुझाव दिये हैं। गुवाहाटी में नव हिन्दी लेखक शिविर में श्री निरंकार देव सेवक, डा० नामवर सिंह, डा० कुमार विमल, डा० के० पी० सिंह तथा श्री बालशौरि रेड्डी जी ने मेरे इस संग्रह का पुनर्विलोकन किया एवं उनके मार्ग निर्देशन मिले। फलस्वरूप मुझे सभी कविताओं पर विचार कर पुन: संशोधन करना पड़ा। अब जो रूप बना है—वह उक्त सुधीजनों की कृपा का फल है।

इस संग्रह के प्रकाशनार्थ आवश्यक सलाह श्री ओमप्रकाश आनन्द जी, प्रधान—आर्य समाज मंदिर, गुवाहाटी तथा डा० नारायण दास जी ने दी है। मित्रवर पं० देवेन्द्र भूषण आर्य, पुरोहित—आर्य समाज मंदिर का चिर ऋणी रहूँगा। उन्होंने प्रूफरिडिंग का दायित्व संभाल कर मेरे काम को सहज बनाया है। मित्रवर श्री अमूल्य कुमार शर्मा जी ने इस संग्रह को अपनी ही वस्तु मान सुन्दर व शुद्ध छपवाया है। अतः उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

'आनन्द कृष्ण साहित्य कला संगम' ने इस प्रकाशन की सारी जिम्मेवारी ली है। अतः इस संस्था का बहुत आभारी हूँ। श्री निरंकार देव 'सेवक' (दादा जी) का तो सदा ऋणी रहूँगा। इस संग्रह के रूप को तराशने में उनका ही हाथ सबसे अधिक रहा है।

मेरे इस संग्रह में काफी त्रुटियाँ, कमियाँ आदि होंगी। सुधी पाठकगणों से निवेदन है कि इस मणिपुरी भाषी हिन्दी कवि की रचना की कमियाँ बताने का कष्ट करें तो इस कवि का बहुत बड़ा उपकार होगा।

गुवाहाटी प्रवास
आर्य समाज मन्दिर से
२७-३-७६

विनीत—
आचार्य राधागोविन्द कविराज

(क)

श्री निकोलाय ज्वेर्या जी
एक
परिचय



(ज्वेर्या जी ने स्वयं अपना परिचय निम्न शब्दों में लिखकर भेजा है।)

जन्म १६ अगस्त, १९०८ में रोमानिया के उत्तर-पूर्व प्रांत मोल्दाविया में। बुकारेस्त विश्वविद्यालय में भाषा विज्ञान व तत्व ज्ञान का अध्ययन कर १२ वर्षों तक अध्यापन तथा ३ वर्षों तक स्कूल-इंस्पेक्टर का कार्य किया। द्वितीय महायुद्ध छिड़ने पर रोमानियन सेना में भर्ती हुए और युद्ध के उत्तरार्द्ध में रोमानिया, हंगरी व चेको-

स्लोवाकिया की मुक्ति के लिए जर्मन फासिस्ट सेना से संघर्ष किया। समाजवादी क्रांति के बाद पुन: सेना में भर्ती हुए और १८ वर्ष तक सेवारत रहने के बाद १९६४ में कर्नल पद से अवकाश प्राप्त किया। और अवकाश के दिनों में विश्व तत्वज्ञान तथा विश्व साहित्य के क्षेत्र में अन्वेषण किया, साथ ही हिन्दी और बर्मी भाषा एवं साहित्य का अध्ययन किया।

बुकारेस्त के प्राच्य विद्या समाज के सदस्य के रूप में उन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य पर व्याख्यान दिए। रोमानियन तथा विश्व साहित्य और तत्वज्ञान पर उनकी अनेक रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं।

१९६९-१९७० में श्री ज्वेर्या जी ने केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा में हिन्दी भाषा और साहित्य का अध्ययन किया। रोमानिया लौटने पर वे बुकारेस्त विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में हिन्दी भाषा और साहित्य के प्राध्यापक बने। अब तक उन्होंने भारत की विभिन्न पत्रिकाओं में हिन्दी में तीन लेख क्रमश: 'समन्वय', 'धर्मयुग' और 'भाषा' में प्रकाशित किए हैं। उन्होंने भारतीय हिन्दी प्राध्यापकों के सहयोग से रोमानियन विद्यार्थियों के लिए हिन्दी पाठ्य-पुस्तकें बनायी हैं।

सन् १९६४ ई० से श्री ज्वेर्या जी ने भारतीय दर्शन पर गहन अध्ययन, अन्वेषण तथा विश्लेषण प्रारम्भ किया है। आज कल वे भारतीय विचार-दर्शन आदि पर भारतीय सुधीजनों से पत्र व्यवहार

कर रहे हैं। वे 'भारतीय दार्शनिक चिन्तन पर संश्लेषणात्मक तथा तुलनात्मक अध्ययन' प्रस्तुत करना चाहते हैं। उन्होंने 'हिन्दी-रोमानिया बृहत् शब्दकोष' के निर्माण कार्य प्रारम्भ कर दिया है।

श्री निकोलाय ज्वेर्या रोमानियावासी और भाषी प्रथम लेखक और विद्वान हैं। भारत उनके लिए अति श्रद्धेयमय भूमि है, क्योंकि उनके प्रपितामह 'फलाहारी बाबा' का आश्रम 'जगन्नाथ पुरी धाम' में है।

श्री ज्वेर्या जी की धर्मपत्नी श्रीमती अलेक्सद्रीना रोमानिया की सुप्रसिद्ध चित्रकार हैं। श्रीमती अलेक्संद्रीना 'भौतिक विज्ञान तथा रसायन' की प्राध्यापिका हैं।



(ख)

आचार्य राधा गोविन्द कविराज

एक

परिचय



पूर्वी भारत के अग्रणी हिन्दी सेवक एवं लेखक आचार्य राधा गोविन्द कविराज का जन्म १६ फरवरी, १९४२ को जयपुर (गुलाबी नगरी) में हुआ। आपके पितामह ललित मोहन कविराज कुशल वैद्य, वैष्णव पदावली के गायक एवं व्रज वैष्णव शिरोमणि पण्डित थे। आपके शिष्यों में पद्मश्री माइसनाम गुरु अमूबी सिंह मणिपुरी नृत्य के सबसे प्रसिद्ध गुरु हुए। आचार्य जी के ताऊजी संगीताचार्य कृष्णदास कविराज उर्फ किशन जी उस्ताद जयपुर के

सुप्रसिद्ध संगीतकला के पुनरुद्धारक थे। आचार्य जी के मातामह नव कुमार ठाकुर नृत्य-नाट्य शैली के जन्मदाता एवं मणिपुरी नृत्य के प्रथम नृत्याचार्य थे। आपने गुरुदेव रवीन्द्र के नाटक 'नटीर पूजा' को नृत्य-नाट्य शैली में सर्वप्रथम प्रस्तुत किया था। महात्मा गाँधी ने भी नव कुमार ठाकुर द्वारा सम्पादित मणिपुरी नृत्यों को देख सराहना की थी। आचार्य जी के मामा राजकुमार माधवजीत त्रिपुरा के प्रसिद्ध कांग्रेसी नेता थे।

आचार्य राधा गोविन्द कविराज बचपन से ही समाज सेवक रहे हैं। १२ वर्ष की आयु में वृन्दावन में 'बालकृष्ण सेवा समिति' की स्थापना की। १० वर्ष की आयु से आप कवितायें लिखने लगे थे। सन् १९६२ में 'भारत प्रहरी से' 'भारती' में प्रकाशित हुई। नव भारत टाइम्स में पाठकों के पत्र-स्तम्भ में तो १९५४ से लिखते आ रहे थे। अब तक आपके कई लेख, कहानी तथा कवितायें भारती, धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, बालक, अकेला, राष्ट्रसेवक, मैतैलैमा, इरैपाक, समन्वय आदि में प्रकाशित हो चुके हैं।

आचार्य जी ने १९६१ से १९६५ तक त्रिपुरा में 'त्रिपुरा हिन्दी प्रचार परिषद्' की स्थापना कर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के सेवा कार्य में भाग लिया था। आपने त्रिपुरा राज्य सरकार तथा भारत सरकार के साथ उचित कार्यवाहियों द्वारा त्रिपुरा में हिन्दी शिक्षकों की नियुक्ति करवाने तथा उनके वेतन में सुधार लाने का कर्य किया। सन् १९७२

के दिसम्बर में आप मणिपुर के हिन्दी शिक्षक संघ के महासचिव सर्व-सम्मति से चुने गये। आपने इस संघ की स्थापना एवं पुनर्निर्माण में सक्रिय भाग लिया है। सन् १९७३-७४ में मणिपुर में 'हिन्दी शिक्षक आन्दोलन' को चलाया एवं नेतृत्व किया। १७ मई, १९७४ का दिन 'हिन्दी शिक्षक जागृति' दिवस के रूप में मणिपुर तथा राष्ट्र-भाषा हिन्दी के इतिहास में सदा याद किया जाता रहेगा। 'अखिल मणिपुर हिन्दी शिक्षक संघ' के द्वारा सारे भारत में एक विचार क्रांति आचार्य जी चला रहे हैं। इस आन्दोलन के द्वारा उन्होंने अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के 'हिन्दी शिक्षकों' के बीच जागृति लाने का प्रयत्न प्रारंभ किया है। आचार्य जी मानते हैं—"अगर अहिन्दी भाषी क्षेत्रों के हिन्दी शिक्षकों में राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रति प्रेम तथा आत्मीयता पैदा कर दी जाय तो ये हिन्दी शिक्षक हिन्दी प्रचार करनेवाली संस्थाओं तथा प्रचारकों से दस गुना अधिक कार्य कर सकते हैं; क्योंकि आज स्कूलों में भावी भारतीय नागरिकों की शत-प्रतिशत जनसंख्या हिन्दी पढ़ती है।" दूसरी बात इन क्षेत्रों में हिन्दी के प्रति सजगता तथा प्रेम की भावना से ये हिन्दी शिक्षक संगठित हो जायें तो कार्य बहुत आसानी से कर सकते हैं। आज हर अहिन्दी भाषी क्षेत्र के सौ फीसदी स्कूलों में हिन्दी शिक्षक हैं। अतः अहिन्दी भाषी क्षेत्र के कोने-कोने में हिन्दी शिक्षक मौजूद हैं।

आचार्य जी "मणिपुर कल्चर इन्टीग्रेशन कन्फरेन्स" के संस्थापक सदस्य हैं। इस संस्था की स्थापना की नींव १९६६ में पड़ी और

१९६७ में विधिवत स्थापित की गई। इस संस्था ने भारतीय एकता के लिए मणिपुर में बहुत ही सराहनीय कार्य किया है और कर रही है। आचार्य जी 'वेद प्रचारक आर्य सभा' के संस्थापक एवं महामन्त्री हैं। आप इस संस्था के द्वारा धार्मिक-सुधार आन्दोलन चला रहे हैं एवं मणिपुर में आर्य समाज के विचारों का प्रचार कर रहे हैं। इनके साथ कई सभा, संस्थाओं से भी सम्बन्धित हैं। आप 'श्री वृन्दावन शोध-संस्थान, वृन्दावन' के सदस्य हैं।

आचार्य जी की कविताओं का प्रथम संग्रह "क्षितिज सा ध्येय" प्रकाशित कर हमें प्रसन्नता हो रही है। सुधी पाठक त्रुटियों का परिमार्जन करवाने में एवं इसकी परख में मार्गदर्शन देंगे, ऐसी हम अपेक्षा रखते हैं।

—प्रकाशक



(१)

क्षितिज सा ध्येय

देश में कोटि लोग रहते हैं
मगर देश का एहसास नहीं होता।
इतना जरूर है—
जनमते, बढ़ते और मरते हैं
मगर देश से उन्हें कोई सरोकार नहीं होता।
इतना जरूर है—
मकान, खेत, रोजमर्रा की चीजों के
दो 'जौ' पेट में पटकने के
चक्कर में दिनभर
इधर से उधर
'वामन' के साढ़े तीन पैरों को
खोजने की कोशिश करते हैं;
जो शाम को
खटिया पर
धूल से सना
पड़ा मिलता है;
जिस पर तीन लोक की सम्पदा
बलिदान को तैयार रहती है;

उसे देख तब सोचता है—वह
सुबह देखूँगा—
मगर सुबह वह खटिया पर नहीं होता॥

× × ×

एक अजीब उदासीनता में यह आदमी
लगातार जीता चला जा रहा है
उसे ख्याल भी नहीं कि वह
किस लिए जीता है?

× × ×

सिर्फ कभी चाय की चुस्की के वक्त
अखबार में अपने देश का नाम पढ़कर
या
कभी किसी वक्ता के मुखारविन्द से
अपने देश के बारे में सुनकर
उसे चौंकना पड़ता है—
कि अरे, यह कैसा देश
जहाँ वह रहता है;
जहाँ आदमी देश के बारे में कुछ भी
न सोचता न करता॥
लेकिन अगले क्षण
रेल के इंजन की तरह धुँआ छोड़

स्टेशन से ईंधन ले चल देता।

× × ×

अगर लोग
वामन के पैरों को खोजने के बजाय
सोचें कि यह एक देश है,
जिसकी एक ईकाई मैं भी हूँ
यहाँ मैं रहता हूँ
मुझे उसके लिए कुछ करना है
सोचने के साथ
दो पैरों को दो करों के साथ
दिल दिमाग का जोड़ा बना
एक डग रोज चला होता
तो यह देश फला-फूला ही नहीं
धरा का स्वर्ग बन गया होता॥
मगर
दो 'जौ' पेट में पटकने के लिए
छः पग सफेद चादर
सिर ढकने के लिए,
नौ हाथ पर्दा
लाज बचाने के लिए
जब तक पास नहीं होता,

जीवन के बचाव के लिए
नाखून फौलाद के
जीवन की बोली बोलने के लिए
खगड़ शब्दों का
तोप-खाना नहीं होता—
तब तक क्षितिज सा
पास, नीचा, हाथ में आने लायक
हमारा ध्येय बना रहेगा ॥

(समन्वय—१९६९-७० प्रकाशक: केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा।)



(२)

हृदय सम्राट

श्रुति—कल्पित अनजान नगरी को
मानस पट पर खींच लाने को
कृत संकल्प हो
अन्ध कूप को पार कर
चुनौतियों को उठाकर

जो बढ़े थे—
अन्धेरे से लड़ने के लिए
पिनाकों के सामर्थ्य को ललकारते
दर्पोन्नत दुर्लंघ्य शिखरों को रौंदकर
क्षितिज को अपने भीतर समेट लेने को
सहजता से आक्रांत हो
अपना गति से
जो बढ़े थे—
लचीली बर्छियों की फसल को
दुधारी असि लहरों को
गति को
चंचलता को
नियन्त्रित करने को
शिराओं को चीर
चट्टानों की परतों पर
ध्रुव का विश्वास ले
क्षण पर देह रक्तिम छाप छोड़ते
जा बढ़े थे—
गढ़े खूनी पंजों को नेस्तनाबूत करने को
कम्पित धरा पर
तीनों लोकों को नापने को

वामन-चरण

दूर तक बिछी
दलदली मुलायम मिट्टी पर
लथपथ अस्तित्व को
परिचित पथों की परिधि पर
मान-'व'-रण की मर्यादा मानने को
जो बढ़े थे—
मन मीलों के मल को मलने को
साबुन के बुलबुलों की आशाओं पर
अनजान नगरी के बन्द द्वारों को
खुलवाने को
अपने अस्तित्व को मिटाने को
किलकारी क्रीड़ा करते
इन्द्र धनुष की कड़ी बनकर
हर मायूसी को मल
विमल पंकज दल खिलाने को
ध्रुव संकल्प ले
जो बढ़े थे—
वे ही है आज
हमारे हृदय सम्राट। ●

[मैतै लैमा, इम्फाल, जून १९७२]

(३)

तुमने चाहा

तुमने चाहा
हर फीकी मुस्कान
हर अर्थ हीन खामोशी
अकारण चिड़ चिड़ाना
फूलों की हँसी
चिड़ियों की चहक में बदल जाए॥

तुमने चाहा
राह के काँटे—कँकड़
खाई, टीले, दल-दल
कोलतार की पक्की सड़क में बदल जाए॥

तुमने चाहा
घन मेघ आँधी से ढका आकाश
शीतल स्वच्छ शारदीय
महक उड़ाता नीलाम्बर हो जाए॥

तुमने चाहा
ढलती दोपहरी
ढूलकता सूरज
ढलती ग्रीष्म की शाम

उषा वेला का सूर्य बन जाए।
और देखने लगें
पूरब के उगते सूरज को सब कोई॥
तुमने चाहा
देश पुस्तक का हर पृष्ठ
उस पृष्ठ की हर लाइन
तुम्हारे सामने खुल जाए।
ताकि तुम पढ़ सको
उनकी चिन्ताओं, विवशताओं का हिसाब।
सुलझा सको एक बार
रंति देव[1] की कुटिया की समस्या॥
पर तुम्हारे पास
फ़ुर्सत का पुर्जा
नहीं पहुँचा अभी तक,
क्योंकि
तुम मशगुल रहे
अपने हाथ पैरों को धोने में
दूध घी मक्खन से॥
पर हर बार आ आ
कहते रहे—

---

1 गरीब आदमी।

"दिल खोल बताओ
तुम क्या चाहते हो ?
मैं हरबार आशा से
तुम्हें अपने तन-मन का हाल
अपनी गरीबी
अपनी ईमानदारी
अपनी आकांक्षायें
सभी कुछ बताता रहा।
तुम सुनते रहे
बगुले ध्यान में
उठी टाँग पर
आँख मूँद।
बस मेरी गलती
ये हीं थीं॥
अगर मैंने ईश्वर प्रदत्त
हाथ, पैर और दिमाग
अपने प्रयास से चलाया होता।
तो
आज तक
साढ़े तीन हाथ की खाट
सात हाथ का चीर

दो 'जौ' के दाने
सोने को
आधो भाग ढकने को
उदर भट्टी में भुनने को
मेरे पास हो जाता।
मेरा दुःख भी दूना न होता
कुछ माइनस जरूर हो जाता
तुम्हारी भी दौड़-धूप कुछ कम हो जाती ॥

राष्ट्रसेवक—असम राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी



(४)

प्रेम की खोज

नदी, मैदान, पर्वत,
वन, उपवन, घर, द्वार,
मंदिर, मसजिद, गिरजा द्वारे
मैं खोज रहा हूँ
तेरा प्रेम।

रात दिन वर्षों से
मन में आग सुलगाये
पिघल रहा है प्रेम।
पिघल रहा है प्रेम
दिन-दिन, पल-पल, युग-युग
जादू की डोरी तान
पर्वतों में, घाटियों में
कुटियों में, महलों में
चन्द्र का मृदु प्रकाश बन
झिलमिलाते तारों के साथ।
उसका ही सौन्दर्य, उसकी ही शक्ति
उत्फुल्ल प्रातः और ढलती हुई सांझ
असंख्य सागर लहरों में
प्रकृति—सौन्दर्य में
चिड़ियों की चहक में
फूलों के खिलने में
तरु पल्लवों के झुमने में
भ्रमर गुंजन में
तितलियों के नर्त्तन में
देखता हूँ मैं
तेरा प्रेम !

बढ़ा चुका हूँ मैं हाथ
जिस ओर हो तुम
ओ मेरे प्यारे प्रेम !
तुम में हीं दृढ़ता और सन्तुलन
प्राणों के प्राण
सत्य शिव सुन्दर
पूरी दीवानगी के साथ
गाता हूँ मैं
तेरा प्रेम !
तुम्हीं मेरी तत्र-सूक्ति
तुम्हीं मेरी मन्त्र गुक्ति
धर्म कर्म जीवन
तुम्हारा मैं, मेरी तुम
ओ जीवन प्रेम
देखता हूँ मैं
तेरा प्रेम !

(विजया दशमी १९७४)



(५)

विनोदिनी

शासित पालित है
यह जग जीवन
विमल विवेक बुद्धि से।
वसुधा का गौरव
प्रस्फुटित है
विमल विवेक बुद्धि से।
विनोदिनी वासांचल
विद्वेष त्याग
वसुधा का गौरव
प्रस्फुटित करती है
विमल विवेक बुद्धि से।
नोहर[1] नोई[2] है यह
नोर[3] नैसर्गिक नीर
निकलता है इसी से।
मिलता है निर्वाण[4]
निर्मोहिता, निर्भीकता, निर्बाधता,
विमल विवेक बुद्धि से।
दिव्य दिनराज[5]

दिल का दिवालियापन
दूर होता हैं इसी से।
दिखाती हैं यह
दिल की दिक्कत
दिग्भ्रम से कर दूर
दिग्दर्शक[6] दीक्षक[7] बन।
दिलाती है तब
दिव्यचक्षु दिष्ट[8] बदलने को
विमल विवेक बुद्धि से।
नीर निधि का रहस्य तब
प्रेम सलिल बन
प्रेमी हृदय को
नीरज अर्पित करता
निर्मल निधि प्रेम
तब अभिन्न एकाकार रूप धर
हो जाता निर्माण एक रूप
विमल विवेक बुद्धि से।

---

१ अद्भुत; २ वह रस्सी जो गौ दुहते समय उसके पिछले पैरों में बाँधी जाती है; ३ नवल; ४ मोक्ष या मुक्ति; ५ सूर्य; ६ दिशा दिखानेवाला; ७ गुरु; ८ भाग्य।

(६)

दीन का सौभाग्य

निर्बल हो
निर्धन हो
यह मत सोचो !
दीन जनो !
हीन जनो ! टेक।
निपतित हो
विदलित हो
पिंजड़े का पंछी बन बन
व्यर्थ गँवाते हो जीवन
यह मत सोचो ।१। दीन०
धनवानों से
बलवानों से
तुम शासित हो
निष्कासित हो
सदा तिरष्कृत
सदा वहिष्कृत
यह मत सोचो !

सिसक-सिसक कर
मत रोओ ! मत रोओ ! ॥२॥ दीन०
शीश झुकाओ
मत तुम जाकर
मंदिर, मसजिद, गिरजा घर पर
नहीं जानते हो तुम जिनको ॥३॥ दीन०
देवी और देवताओं पर
तुम्हें भटकना पड़ता दर दर
पंछी बनकर, भिक्षुक बनकर ॥४॥ दीन०
नहीं किया ईश्वर ने पैदा
तुम्हें गुलामी ही ढोने को ॥५॥ दीन०
नहीं भाग्य अपने कोसो
दीन हीन तुम दास नहीं हो ॥६॥ दीन०
तुम्हें कसम है देश प्रेम की
छोड़ो गम, करो करम,
ईश्वर प्रदत्त शक्ति साधन से
कुछ कर्म, कुछ कर्म, कुछ कर्म।
तो निश्चय तुम्हारा दुर्भाग्य
सौभाग्य में बदल जायेगा ॥७॥ दीन०



(७)

कुलबुलाहट

ये युवा हाथ कुल बुला रहे हैं प्रतिपल
चाहते हैं उगाना बाल हथेली पर ;
क्योंकि
इनके हाथों में सत्ता स्वप्नवत भी नहीं
आश्वासन, अवसर का चिह्न भी नहीं
वे अधोमुख हो बैठना चाहते नहीं ॥
इसलिए
ये युवा हाथ कुल बुला रहे हैं प्रतिपल
चाहते है करना अपना स्वाभिमान साकार
उन शहीदों की श्वासों पर
जो युवक थे एक दिन
देश-जाति पर कुर्बान होते वक्त पर।
पर पथ के पुराने पत्थर
गाड़ी उनकी चलने देते नहीं
इसलिए
उमड़ रहे हैं बादल असंतोष के
जल रहे हैं हृदय स्निग्ध उनके ॥

समय है उनका आगया
मगर राह थे पत्थर देते नहीं,
इसलिए
ये युवा हाथ कुल बुला रहे हैं प्रतिपल ॥

(राष्ट्रसेवक—अगस्त १९७४)



(८)

न्याय हेतु

तो कह सकूं गहर-गहर
स्वत्व हेतु, न्याय हेतु, सत्य हेतु
व्योम को भू से मिला दो !
सित विमल धार को हिला
उर उपल करुण रव मिला
नित करम रत पानि मिला
शिव मधुमय नयन खिला
कह सकूं अगर
स्वत्व हेतु, न्याय हेतु, सत्य हेतु

व्योम को भू से मिला दो !!

जग उठे स्वजाति दम्रे व्रती जवान अगर
जग उठे स्वातन्त्र आर्य रक्त दान अगर
तो मिले स्वाभिमान जवान सहस्र।
तो कह सकूँ गहर-गहर
स्वत्व हेतु, न्याय हेतु, सत्य हेतु
व्योम को भू से मिला दो !!!
जग उठे नवीन शक्ति हाड़-हाड़ में अगर
जग उठे नवीन मान माँस-माँस में अगर
जग उठे नवीन बान रक्त-रक्त में अगर
जग उठे नवीन आत्म बल दिल में अगर
तो मिले स्वाभिमान जवान सहस्र।
तो कह सकूँ गहर-गहर
स्वत्व हेतु, न्याय हेतु, सत्य हेतु
व्योम को भू से मिला दो !!!!



(९)

शिव या शैतान

कोई भी मनुष्य पूर्णरूप से
न शिव है न शैतान।
शिव के अन्तर में शैतान,
शैतान के दिल में शिव,
रहता है मुसकराता हर क्षण ॥ टेक पं० ॥

शैतान प्रकट होता है उस क्षण,
जब विद्वेष से जलता है मन,
अन्याय, अत्याचार से हो निरवसन,
दबा दबा तड़फता है जब जन ॥ कोई०

प्रेम, ममता, दया, सत्य, धर्म,
सच्चिदानन्द के आनन्द में निमग्न,
देश, समाज, मानव के लिए जन,
सेवा भाव से बिताता है जब जीवन
शिव प्रकट होता है उस क्षण ॥ कोई०

अपराधी, दोषी, दुर्दान्त-दस्यु-जन
छल, प्रपंच, हथियार के बल,
दबाता है जब मानव को
होता है प्रकट शैतान उस क्षण ॥ कोई०

मगर सका न जीत कभी शैतान
जग के जन को शेष क्षग।
जीता तो है उसे हमेशा ही
अहिंसा ममता के मन
हृदय परिवर्तन, प्रक्रिया के बल॥ कोई०

(राष्ट्रसेवक, अक्टूबर—१९७४)



(१०)

युग की चेतावनी

खाली हाथ, नंगे पाँव, फटे वस्त्रों में
झुका माथ, खाली पेट, विषाद-आक्रोश भरे नेत्रों में
'वामन' का पुतला
व्यथा-दबानल की ज्वाला में जल रहा है;
क्योंकि
नेता, अफ़सर व्यापारी ने
"सिर की टोपी,
पाँव की जूती,

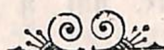
तन की लंगोटी,
पेट की रोटी,''
'धन-गरज' बन
नन्दन—वन देने के आश्वासन पर
यमराज के अदृश्य हाथों से छीनी थी।
इसलिए
'वा' मन ही अब वह
अपने पंजों की
दुर्बल दाँतों की
चूपती शक्ति को बटोर रहा है;
जिससे
अन्ध बर्बर पशु बन कर
'धन-गरजों' की गर्दन-कमर तोड़
रक्त-क्रान्ति को बरसा कर
तड़पती विकलती, घूँटती नरकाग्नि को
शान्त कर सके।
जिसे—
नेता, अफसर, व्यापारी की
'धन-गरज' आँखें नहीं देखा पा रही है।
इसलिए वे—
प्रजा का रक्त और पसीना

'अमर बेल या जोंक' की तरह
सेवा, विकास या व्यापार के नाम पर
चूस रहा बस चूस रहा
और चूसने की ही सोच रहा।

इससे
'वामन' पुत्र मिट रहे
'धन-गरज' फल-फूल रहे
गरीबी उनकी बढ़ रही
समृद्धि इनकी बढ़ रही।
मगर अब पाशा पलटने वाला है—
समय रहते 'धन गरजों'
चेतो ! चेतो !! चेतो !!!
युग तुम्हें चेतावनी दे रहा
चेतो ! चेतों !! चेतों !!!

अन्यथा
तुम्हारे कंकालों को ही नहीं
तुम्हारे भूतों को भी
चीखने तक का
मौका नहीं मिलेगा।

(राष्ट्र सेवक, मई १९७५)



(११)

नहीं परिचित यहाँ

हर तरफ आने जाने का शोर
हर तरफ भोंपू बाजे का शोर
हर आवाज सुनता हूँ यहाँ
मगर आदमी की आवाज नहीं यहाँ॥
जमीन के अन्दर भी कमरें
जमीन के ऊपर भी कमरें
एक से हजार तक कमरें
एक मंजिले या सौ मंजिलें
मगर आदमी रहते नहीं यहाँ॥
करते काम एक साथ
आफिस-कारखानों में;
खाते खाना एक साथ
होटल जलपान गृह में;
चलते है सड़क पर एक साथ
बस, ट्राम, टैक्सी में;
रहते है साथ साथ
नगर, महल, घर, गली में
मगर आदमी परिचित नहीं यहाँ॥

लगते हैं परिचित से
एक दूसरे के साथ साथ
ये चेहरों के मेले
ये बोलियों के मजमे
मगर आदमी कोई परिचित नहीं यहाँ ॥

[राष्ट्र सेवक, सितम्बर १९७५]

---

(१२)

पृथ्वी की तान

नील गगन है खुला एक पृष्ठ
उस पृष्ठ का शीर्षक है चमकता चाँद;
उस पृष्ठ कविता के शब्द नक्षत्र तारे,
जिसमें लिखी गई है जीवन की पहचान ||१||

उस जीवन का गगन है खुला दिल
उस खुले दिल की कविता औ तान;
रहती है तेरे अधरों पर बन मुस्कान
जिसमें लिखी गई है जीवन की पहचान ||२||

जिसमें अनुभूति जीवन की गहराई,
सौन्दर्य मधु भाव से ले अगड़ाई,
करती है स्नेह, ममता, प्रेम का दान;
वह नारी नर से है महान ॥३॥

स्नेह, ममता देती है जो जननी बन
आह्लादित करती है लक्ष्मी धन बन
जिस से बनते कविता के छन्द बन्द
उसी से गूँजते प्रेम राग के तान ॥
वह नारी नर से है महान ॥४॥

वह तुम हो ! वह तुम हो !! वह तुम हो !!!
जिस में रहते हैं जीवन के बोल,
जो गूंजन करती हृदय कींकणि
बन जीवन प्रणय के गीतों की तान ॥५॥

वह तुम हो ! वह तुम हो !! वह तुम हो !!!
जिसमें लिखी गई है पृथ्वी की मुस्कान
उसी से गूँजतें प्रेम राग के तान।
वह नारीं नर से है महान ॥६॥



(१३)

घटती दूरी, बढ़ते घेरे

अपोलो से अपोलो तक,
कोसमोस और मार्क्स भी,
निकट से निकट होता जा रहा है,
रहस्यों की पपड़ियाँ खोलकर।

तम में चमकते,
निर्जीव पिण्डों का रहस्य,
खुलता, घटता जा रहा है,
रहस्यों की पपड़ियाँ खोलकर।

नीलाम्बर में निमग्न तारों का,
टिमटिमाता रहस्यमय चेहरा,
मानव के सामने खोलते जा रहे हैं,
रहस्यों की पपड़ियाँ खोलकर।

सक्रिय हैं निर्जीव यन्त्र,
मानव मन के बन तन्त्र,
उद्घाटित कर रहे हैं मन मन्त्र,
रहस्यों की पपड़ियाँ खोलकर।

लेकिन बढ़ता जा रहा है,
मानव मन का तम,
दिन–दिन, पल-पल,
रहस्यों की पपड़ियाँ खोलकर।

काश, मानव-मानव मन
मूँद नयन, खोल नयन
अन्तर गगन के नयन
खोजता दो-एक पल
रहस्यों की पपड़ियाँ खोलकर।

तो उसे मोती, हीरे, पन्ने,
प्रेम, स्नेह, दया, करुणा रूपों में,
मिलता त्याग-बलिदान के फल,
रहस्यों की पपड़ियाँ खोलकर।

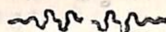
अगर ऐसा होता तो,
कटुता का काला कटीला घेरा,
नहीं बढ़ता क्षण, अस्त्र बनकर,
रहस्यों की पपड़ियाँ खोलकर।

आज खुलती जा रही है,
ब्रह्माण्ड की खिड़कियाँ,
टेलीविजन बनकर,
रहस्यों की पपड़ियाँ खोलकर।

अदृश्य अनन्त दूरियाँ,
ध्वनि की पहुँच से बाहर की दूरियाँ,
राडर कणों की बेतार तरंग बन,
खुलती जा रही हैं पल-पल,
रहस्यों की पपड़ियाँ खोलकर।

प्रकाश की अनन्त दूरियाँ,
कानों की पहुँच से बाहर रहनेवाली ध्वनियाँ,
हाथों के घेरे से दूर रहनेवाली कलियाँ,
पलकों की दूरी बन रही हैं,
रहस्यों की पपड़ियाँ खोलकर।

मगर मानव मन का
धर्म-कर्म-जीवन का
प्रेम, त्याग, अपनेपन का
घेरा बढ़ता जा रहा है दिन-दिन
रहस्यों की पपड़ियाँ खोलकर।



(१४)

छाप धर

हो सके तो काल पथ पर, छाप धरता चल।

कौन छोटा या बड़ा है,
कौन खोटा या खरा है,
ऊँच यह है, नीच वह है,
इस सोच में मन तू न पड़;
हो सके तो काल पथ पर, छाप धरता चल।

कौन रीता या भरा है
कौन अपना या परा है
कौन मानी या धरा है
इस सोच में मन तू न पड़;
हो सके तो काल पथ पर, छाप धरता चल॥

बढ़कर कठिनाइयों को जीत
लेकर शक्ति सामरथ से
विचार-वेक-बुद्धि योग से
कर निर्माण नव-नव पथ;
हो सके तो काल पथ पर, छाप धरता चल॥

———

(१५)

मेरे जीवन में आया बसन्त

मेरे जीवन में आया बसन्त
लाया क्या ही नई वार्ता ?
कानों-कानों में सुनने को कहता
जितने विभ्रम भरी कुँजे
जब गुन-गुन अलि गूँजे
लाना उसे मेरे पास
जिसे मेरा मन चाहता ॥

मन भी गुन-गुन कर कहता
मुझे तुम देना वही
जिसे मेरा मन चाहता ।
मेरे जीवन में आया बसन्त
लाया यही नई वार्ता ॥

मेरे कण्ठ कलरव गूंजन में
हृदय-स्पन्दन रहता मौन ।
ज्वार आ क्यों उतर जाता,
मन मेरा गुन-गुन कर कहता
क्योंकि यहाँ मेरा है कौन ?
जिसकी मुट्ठी में जीवन सौंपता ।

मेरे उत्ताल मनोयन्त्र में
जागते रहते हैं नव छन्द अनेक
मधुर स्वप्नों के अरमान ले
जिसमें रमेगा मेरा जीवन पल
उसकी हर साँस बनकर
जिसे मेरा मन चाहता।
दूंगा उसी को प्रेमामृत का अर्घ्य सारा
उसी की चाहना बनकर
जो मुझे अपना बनाना चाहता।
लाया आज नया बसन्त मेरे जीवन में
यही गुन-गुनाकर नयी वार्ता।
मेरे जीवन में आया बसन्त
लाया क्या हीं नई वार्ता ?

(महाराजा वीर विक्रम कालेज, अगरतला ५।१०।६१)

(१६)

पागल नहीं; गरीब है

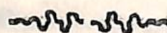
सुबह से शाम तक
शाम से भोर तक
किसी पथ गली में
बाजार के शोर में
बड़बड़ाकर चलनेवाला
अपने पर खीझनेवाला
वह तो—
पागल नहीं; गरीब है।

तार तार वस्त्रों से
मैले-कुचैले वस्त्रों से
सड़क की धूल से
तन को सजानेवाला
अपने पर खीझनेवाला
वह तो—
पागल नहीं; गरीब है।

दाँये कर अलमुनियम का तसला
बाँये हाथ अष्टावक्र लाठी

सिर पर बरगद
चेहरे पर घनी झाड़ी
आँचल में बासी रोटी
ममता से बाँधनेवाला
अपने पर खीझनेवाला]
वह तो—
पागल नहीं; गरीब है।

कुत्तों के साथ
बाबुओं के पास
खोमचे का पतल
उठाकर चाटनेवाला
अपने पर खीझनेवाला
वह तो—
पागल नहीं; गरीब है।



(१७)

मेरे दिवाली का दीप

किस दीप को जला दिवाली मनाऊँ आज,
जो खुले थे द्वार, बन्द से हो रहे हैं आज,
जो बसा था नन्दन कल्पना का राज,
उजड़ा पड़ा है व्यस्त दुनिया का साज।
आ रहा संदेशा आज
वियोग का ले साज
दूर बसे तारों के घर से
दूर तले नीले अम्बर से।
किस दीप को जला, दिवाली मनाऊँ आज॥

सूना-सा है विहँसता-मचलता,
दर्द से भरा हुआ है मेरा-आँगन आज,
मुस्कराती बगिया की लता
मुरझा झुक गई है आज।
मीठी लगती कुहूक कोयलियाँ की
बन गई है शोले अंगार की आज,
गूंजती है अजनबी कर्कश ध्वनियाँ
पड़ी प्यार की मधुर मुरली से आज।
किस दीप को जला, दिवाली मनाऊँ आज॥

पड़ी है तेरी वीणा आज,
घर के सूने कोने में आज,
जहाँ रहा करती थी सदा
न अन्त होनेवाली प्रियतम आवाज।
वहीं से निकल रही है सिसकती आवाज,
टूटी वीणा का बन करुण राज,
किस दीप को जला, दिवाली मनाऊँ आज॥
मेरी कुसुमकानन की राह
खो गई काजल की कालिमा में आज।
जैसे हर फूल का मुखड़ा
छाती फुलाती पहाड़ियाँ
रंग-बिरंगी मतवाली क्यारियाँ
खो गई है श्यामा में आज।
किस दीप को जला, दिवाली मनाऊँ आज॥
हो गयी बन्द कली, नैन पलकों के साथ,
सिमट चुकी सुरभि बन्द पंखुड़ियों के साथ,
दमकता तन--रंग की आभा,
कृश हो चुकी है आज।
मन को मोहनेवाला सुहावना मोहक
पूछ गया है वह चित्त चुरानेवाला चित्र आज,
पर बाकी है उसकी इन नैनों में याद आज,
किस दीप को जला, दिवाली मनाऊँ आज॥

झुक गई दिगन्तों में उड़ती, रंगमयी हर्ष की पताकाएँ
रुक गए पग दिशा भूल खोजती पगडंडी को आज,
बन्धन हुए ढीले, ुक्त हो गई भुजाएँ
हो गए दृश्य रीते, सुन्दर स्वप्नों के आज।
किस दीप को जला, दिवाली मनाऊँ आज ॥

एक आशा-भरोसा विश्वास के बल पर
तम में भटकता फिर रहा हूँ आज,
लक्ष्यहीन–भाग्यहीन-पदच्युत
कहीं मिल जाय तेरे मन का मेरे मन में
छिपा तेरा प्रेम दीप आज।
तो मन जायेगी दिवाली आज ॥

इसी केन्द्र बिन्दु पर
कम्पास की सारी परिधि
वृत्तक्षेत्र, व्यास-अर्द्धव्यास
नुकीली टांगों के किसी बिन्दु पर
सिमटी पड़ी है प्यार-मुहब्बत की जिन्दगी आज।

अगर वह केन्द्र बिन्दु
रेशमी डोरियों के तले कहीं मिल जाय आज।
तो विश्व ब्रह्माण्ड की हर दिशा में
फैला दूँ प्रेम का ज्योतिर्मण्डल आज।

जिससे हर घर कर में
जल उठे प्रेम दीप आज
जिससे जन-जन के मन-मन का काज
उस प्रेम दीप की डोरी से बंध जाय आज ॥

(११-९-६५ शनिवार, मोइरां)



(१८)

हृदय ताज

सच जीवन में तुमको देखा
मुसकाता खिलता हँसता देखा
मान हृदय का राज ।
मेरे सिर के ताज ॥
पल-पल में, रज-रज में
आते तुमको मैंने देखा
उठता अपनाता राज
मेरे सिर के ताज ॥

(मैतैलैमा—अप्रैल, १९७५)

(१९)

गंगाजल की अमृत धारा

हे आर्य भारती !
आज की आजादी के लिए
तन मन धन से
कोटि-कोटि शहीदों ने
रक्त की नदियाँ
काश्मिर से कुमारी द्वीप तक
मरुस्थल से मणिपुर तक
बलिदान की लहरों से बहायी थीं ।
आज उसी की आह्लाद लहरा रहा है;
सिन्धु-गंगा-यमुना-नर्मदा-कावेरी में;
सप्त किरणों से सजा शौर्य-सूर्य ताज
सप्त लाख गाँव, नगर प्रान्त कुंजों में ॥
कल तक वे शहीद गुलामी में जिये, लड़े और मरे ।
आज तुम उनके बदौलत
आजादी की हवा में साँस ले रहे ।
आज तुम महान शक्ति हो
इसलिए
जग देख रहा आज तुम्हारे धर्म-ध्वज को ॥

इसलिए तुम्हें—
अणु-अस्त्र-शस्त्र की
जलती आग बुझानी होगी।
दलित-दीन दु:खी की
जी की कली खिलानी होगी।
इसलिए तुम्हें—
जग में फिर से सरसाने को
तप गंगाजल की अमृत धारा को
पल-पल निर्मल कर
जन-मन में बहाना होगा।
तभी तुम्हारी मुक्ति—मुक्ति होगी॥

—:•:—

(२०)

मत तड़पाओ

मत तड़पाओ उस हृदय को,
जिसमें पवित्र प्रेम पलता हो।
जग हितार्थ जो जलता हो,
पर हित जो जीता है।

क्योंकि

उसी पवित्र प्रेम में

स्नेह ममता रहता है।

उसी विमल विवेक में

ज्ञान-ज्योति बंधता है।

जो मोक्ष-मार्ग दिखा

सुख-शान्ति देता है।



(२१)

पहाड़ी नदी की गीत

पथ दो ! पथ दो !

हे ! प्रतिकूल पाषाण खण्डों;

क्रीड़ा करूँगी अविराम तेरे अंकों में,

तोड़ तेरी बांधी सीमा बहूँगी मैं,

तृण-तरु के तन के लिए मैं,

हे ! परिहास करने वालों पाषाण खण्डों ॥

मत रोको ! मत रोको !

मेरे हृदयोल्लास-कलरव को,
मेरे जीवनदायी संगीत को,
अपने उन्नत कठोर करों से,
हे ! हृदयहीन पाषाण खण्डों ॥
तुम में कोमलता, सिक्तता न सही,
तुम में रसग्राह्यिता न रही,
मगर बहने दो मुझे,
अपने तन पर से,
निरन्तर चलनेवाली गति से,
हे ! रसहीन शिला खण्डों ॥

मत हँसो ! मत हँसो !

मेरे लघु तन, रूप, शक्ति पर
मेरे निर्बल, निर्मल, निर्भय रूप पर
जो होता रहा है विलीन
पल-पल, पग-पग पर निरन्तर
हे ! परिहास करनेवालों पाषाण खण्डों ॥

तुम मुझे जो भी कहो !

मुझे वह सिर माथे स्वीकार है,
पर रहो तुम अटल अचल मेरे पथ पर

क्योंकि मुझे तुम्हारे कंधों की जरूरत है,
हे ! निरमोही, निष्ठुर, निर्दयी गिरा-भ्रातों ॥

तुम सोचते हो;

अपना सीना तान बाँहें फैला
मुझे मेरे पथ से च्युत कर दोगे;
मुझे अपने घेरे में बन्द कर लोगे;
हे ! पुरुष पाषाण खण्डों ॥

मगर यह सब तुम्हारा बहम है।

क्योंकि मैं तुम्हारे घेरे में कैद रह,
अपनी शक्ति और काया को निरन्तर
धीरे-धीरे, बूँद-बूँद जोड़ कर
बढ़ाती रही हूँ हर पल-पल।

तुम्हें करती हूँ मोहित मैं,

सुर, ताल, लय, नाच, नाद से
सुरानन्द और रूप मेघों की सृष्टि कर,
जिस पर तुम मुग्ध हो अपनी वृद्धि का कार्य
देते हो बन्द निश्चिन्त होकर।

तब मुझे कहीं न कहीं,

बढ़ते जाने के लिए

कोई न कोई राह मिल जाती है।
तब मैं तुम्हारे कंधों और सिरों की
विशालता और ऊँचाई से उठ जाती हूँ मैं।
तब मैं कूद ऊपर से
फिर बहने लगती हूँ॥

लेकिन मैंने प्रतिशोध के बारे में
कभी सोचा तक नहीं दिल में,
अभिशाप दे भस्म करने की कल्पना की नहीं,
क्योंकि मेरा अस्तित्व तेरे बिना नहीं,
हे ! परिहास करनेवालों पाषाण खण्डों॥

तुम सोचते हो मुझे रोक कर,
मेरी शक्ति, मेरी चाह, मेरे अस्तित्व को
कर रहे हो नष्ट हर क्षण,
मगर वास्तविकता यह है—
तुम विलीन करते हो अपने तन को,
हे ! परिहास करनेवालों पाषाण खण्डों॥

तुम सोचते हो मुझे गिराकर,
मुझे करते हो नष्ट, कण-कण मेरा बिखेर कर
लेकिन मुझे गिराना, मेरे लिए वर सिद्ध हो जाता है;

क्योंकि तब मुझे नया जीवन मिल जाता है,
क्योंकि तब मुझे नयी शक्ति मिल जाती है,
हे ! परिहास करनेवालों पाषाण खण्डों ॥

इसलिए नत है मेरा मस्तक,

तुम्हारे चरणों में
ओ ! मेरे पूज्य तात ।
क्योंकि जब तक तुम्हारे कठोर शृंग हैं,
क्योंकि जब तक तुम्हारे विशाल कंधे हैं,
क्योंकि जब तक तुम्हारा कठोर तन है,
क्योंकि जब तक तुम्हारा कठोर जीवन है,
तब तक मेरा भी अस्तित्व है ॥
क्योंकि मेरे रूप के लिए
तुम्हीं अपने ऊँचे सिरों को उठा
मेघों को रोक कर बरसाते हो ।
तुम्हीं अपने वक्ष्य के घेरे को फैला
बरसते जल को एकत्र कर जमाते हो ।
और शीत ऋतु में
अपने सिरों, कंधों और तनों पर,
तुषार की बरसा सह
निरन्तर हिम एकत्र करते हो ।

जो निरन्तर भीतर-भीतर
पिघल-पिघलकर, जल बनकर
मुझे मेरा अमर जीवन देता है।
हे! परिहास करनेवालों पाषाण खण्डों॥

(जयपुर, महाराजा कालेज—१९५९, मार्च)



(२२)

जननी के स्नेहाँसू

माँ को समझाऊँ कैसे मैं ?
काल आया, मामा को ले गया।
चिर परिचित मित्र की तरह
वे भी चले गये उस की पुकार पर
हँसते हँसते माया को भूला।
पर यह कितना सत्य है
यह कैसे जानूँ मैं ?

दुनिया आज भी करती उन्हें याद,
कुछ आह भर, कुछ शोकाद।
लेकिन इन से आगे वे कुछ नहीं कर सकते।
मगर मेरे जननी के अन्तर में
भ्रात-स्नेह, ममता का बन्धन
तूफान के रूप में सदा बहता रहता है।
मगर ऊपर से वह शून्यमान रहता है।
लेकिन जब कभी कोई स्नेह प्रेम पवन,
कहीं से जननी के उर के पटों पर
थपकियाँ दे थपथपा जाता है—
तब उठती हैं आंधियाँ
उमड़-घुमड़ आते हैं घन
तब उठता है ज्वार-भाटा
ले उत्ताल लहर-तरंग
विह्वल पड़े शान्त शोक सागर में।
तब मैं ऊपर-नीचे
भीतर से बाहर
दिग् दिगांतों की ओर देखने लगता हूं
और बैठ जाता हूँ माथा साध
क्या करूँ ?

उधर तब जननी के उर से
अनुराग जलधि,
भ्रात स्मृति की ज्वाला से
वाष्प के रूप में अपना 'जल'
अन्तर गगन में उठने लगता है।
और तब उर नभ
अश्रु जलद कणों से घिर जाता है।
और तब खोयी यादों की बरात
म्लान मुखारविन्द को स्वच्छ करने
नेत्रांसु का नीर बन बहने लगता है।
तब मैं देखता सोचता हूँ
ऐसा क्यों होता है?

(माधव निवास, चन्द्रपुर, अगरतला —१२।२।६१)



(२३)

चवालीस कोटि का प्यारा

चवालीस कोटि का प्यारा,
'नेहरू चाचा' जो था न्यारा,
वह था भारत जननी का सहारा,
कल्पना में अकेला था।
जाने कैसा अलबेला था॥

था संस्कृतियों का संगम,
मानवता का सूत्रधार,
'बापू' का प्रतिनिधि,
सत्य अहिंसा का पालक,
दीन दलितों का सुख सागर,
वह कल्पना में अकेला था।
वह शान्ति-दूत अलबेला था।

मानवता का वो त्राता-भ्राता,
मानव का वो शान्ति धीरज दाता,
अणु-आयुध-परतन्त्रता-परवशता का विनाशक
जन-जन, मन-मन को मिलाता

जी रहा था सह–अस्तित्व का स्तम्भ
पंचशील का ले सहारा।
वह पंचशील का दाता था।
वह शान्ति दूत अलबेला था॥

जाति-धर्म-भाषा-वादों से दूर
मानवता को रख दूर
स्वतन्त्रता, विकास, न्याय, समानता
देने का उसने निश्चय किया था।
वह विश्व-बन्धुता का प्रतीक
तटस्थनीति का नीतिज्ञ विधाता था॥

उसी महामानव को भारत से
'इन्दिरा' सिर मस्तक से
महाकाल ने असमय में लूटा था।
उस दिन भारत का अम्बर अंचल,
खादी, राखी का बन्धन
बिलख-बिलख रोया था।
उस दिन 'अंशु' ने माथा ठोका था॥

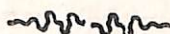
लेकिन जाते-जाते उस महामानव ने कहा—
मेरे कण-कण को बिखेर देना
विश्व के महासागरों में फैलने के लिए।

मेरी भस्मी डाल देना भारत की हर भूमि पर
जिससे मेरा रज-रज पदतल नीचे जा सके
जिन्होंने मुझे सहारा दिया था।

आओ ! आज उसी महामानव 'जवाहर' की
खाकर शपथ | लें प्रतीज्ञा हम—
"बलिदान होगा हमारा जीवन,
राष्ट्रहित, धर्महित, जातिहित,
लायेंगे समानता, स्वतन्त्रता मानव-मानव में,
लुटा अपना सर्वस्व धन-सम्पदा।"

(नेहरू जी को मामा माधव के साथ देखा था। बचपन से ही नेहरू जी के प्रति अपार श्रद्धा रही है। मामा के साथ नेहरू जी से हाथ मिलाया तो और भी श्रद्धा हो गई थी। नेहरू जी से पहले मेरे मामा जी नहीं रहे। मामा जी नेहरू जी की बातें सुनते थे। वे सब बातें आज ताजी हो उठी हैं। उन्हीं स्मृतियों में यह कविता लिखी है।

अगरतला—५-६-६४)



(२४)

भारत निर्माता को श्रद्धांजलि

शांतिघाट की शैय्या पर सोनेवाले,
ओ ! शांति के अग्रदूत, महत्वाकांक्षा के केन्द्र विन्दु
तुमको प्रणाम, तुमको प्रणाम ॥

बापु के थे तुम प्यारे,
भारत के नव निर्माता,
ओ ! जन मन के सम्राट, विश्व मैत्री के मशाल,
तुमको प्रणाम, तुमको प्रणाम ॥

'चाचा' बच्चों के प्यारे,
'भ्राता' हलधर के न्यारे,
श्रम श्रमिकों के बारे
ओ ! नव युग पुरुष, विश्वशांति के कर्णधार,
तुमको प्रणाम, तुमको प्रणाम ॥

तुम नर में नरपुङ्गव थे,
तुम प्रगति के निर्देशक थे,
ओ ! पराक्रम के सहयोगी, राष्ट्रप्रतीक,
तुमको प्रणाम, तुमको प्रणाम ॥

सच्चे अर्थों में जनतन्त्रवाद
सम शब्दों में समाजवाद
इन सबसे ऊपर मानववाद
तुम्हीं ने जग में चलाये थे,
ओ ! मित्र भाव के दीप, भ्रात भाव के प्रदीप,
तुमको प्रणाम, तुमको प्रणाम ॥

बिना रक्तपात किये,
सात सौ मानव निर्मित राज खण्डों को,
'पटेल' को साथ ले तुमने,
जनतन्त्र भारत राष्ट्र बना दिया;
जो कभी विश्व इतिहास में थी नहीं मिसाल;
ओ ! मानव मिसाल, भारत जन मशाल,
तुमको प्रणाम, तुमको प्रणाम ॥

आज तिसरी दुनिया जिसे कहते हैं,
उन राष्ट्रपुञ्जों को तुमने ही जिलाया था।
ओ ! तीसरी दुनिया की नींव के निर्माता,
तुमको प्रणाम, तुमको प्रणाम ॥

(नेहरू श्रद्धांजलि दिवस पर ८|६|६४ को लिखी गयी)



(२५)

आओ दूरियाँ तोड़ें

आओ दूरियाँ तोड़
सब के मन प्राण में समाये
आपस के अन्तर को मिटाये ॥
भेद-भाव के स्वर हो बन्द,
जीवन का निकले जिसमें सही हल,
उस अजय ध्वनिनाद को,
सोये अपनत्व से जगाये।
सब के मन प्राण को मिलाये ॥ आओ०

विघटन, बिखराव औ दुराव तोड़,
हर दिल का टूटा तार जोड़,
खुद गरजी को छोड़,
मैत्री भाव जगाये।
सब के मन प्राण को मिलाये ॥

आओ दूरियाँ तोड़
सबके मन प्राण में सजाये
आपस के अन्तर को मिटाये ॥

(श्रीमती इन्दिरा गांधी के आह्वान को सुन लिखी गई—१९७१)

(२६)

कर्मवीर के लिए

कर्मवीर भ्रम संदेह मन मसोस रहे नहीं,
करते हैं वही, जो उनका दिल दिमाग कहे सही।
बस जानते हैं वे एक बात मन-आत्मा से सही,
कर्म करना है हमें, मानव हित जो होवे सही।

फल भगवान या भाग्य दे या नहीं
कर्मवीर भ्रम संदेह मन-मसोस रहे नहीं।

बैठे-बैठे दूसरों पर लांछना लगाते वे ही,
जो पुरुष नहीं, होते हैं कायर सियाल ही।
जहाँ अपमान को अपमान मानते नहीं,
बढ़ता है 'क्षितिज' अत्याचार-अन्याय वहीं।

उनके लिए न स्वर्ग है
न शान्ति न सर जमी—
है बस जीते जी बहिश्त नहीं,
मर के भी पाते जन्नत नहीं।

कर्मवीर भ्रम संदेह मन मसोस रहे नहीं
करते है वही, जो उनका दिल-दिमाग कहे सही।
पाते हैं सर जमी की बहिश्त ही
'क्षितिज' मर जाते भी जन्नत ही।

